International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 831-834

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 831-834
www.allresearchjournal.com
Received: 17-11-2015
Accepted: 21-12-2015

डॉ० अशोक कुमार
ल0 न0 मि0 वि0, दरभंगा,
साहित्याचार्य, बी0 एड0 ग्राम एवं पत्रालय–बेलामेध,
भाया–दलसिंहसराय,
जिला–समस्तीपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ० अशोक कुमार
ल0 न0 मि0 वि0, दरभंगा,
साहित्याचार्य, बी0 एड0 ग्राम एवं पत्रालय–बेलामेध,
भाया–दलसिंहसराय,
जिला–समस्तीपुर, बिहार, भारत

संस्कारों का आधार–गर्भाधान संस्कार

डॉ० अशोक कुमार

प्रस्तावनाः

गर्भाधान संस्कार एक नींव की ईट की तरह है। जिस प्रकार नींव की ईट अपने अस्तित्व को जमीन के अन्दर गुमनाम कर लेता है। लेकिन सबके सामने विशाल भवन को प्रदर्शित करता है। यह आधार जितना मजबुत होगा, उस पर उतना ही मजबुत और कई मंजिले भवन बनाये जा सकते हैं। ठीक इसी प्रकार गर्भाधान संस्कार नींव की ईट की तरह एक व्यक्तिगत मानसिक एवं शारीरिक क्रिया है। यह जितना शुद्ध पवित्र होगा ,उतना ही संतान तेजस्वी, वर्जस्वी होगा। बालक में इस संस्कार का नामोनिशान नजर नहीं आता, लेकिन उसके सुक्ष्म शरीर एवं मनःस्थिति में इसके गुण विद्यमान होते हैं। यह संस्कार एक सीढी के समान है यह सीढी के प्रथम पायदान है। यह ऊपर जाने के लिए लक्ष्योन्मुख करता है। यह संस्कार किस प्रकार अग्रेत्तर संस्कारों का आधार है ? कैसे अग्रेत्तर संस्कारों को करने में कठिनाई होती है ? और अग्रेत्तर संस्कारों का फल इस संस्कार पर निर्भर कैसे करता है ? इन्हीं सब बातों को सटीक समाधान करते हुए संस्कारों का आधार–गर्भाधान संस्कार का सिद्ध करेंगे।

मनुष्य को बिल्कुल बदल देने, उनमें आमूलचूल परिवर्त्तन कर देने का जो प्रयास वैदिक संस्कृति में किया गया था, उसमें दो–चार नहीं सर्वमान्य सोलह संस्कार है। मानव जीवन को परिष्कृत बनाने वाली वैदिक विधि विशेष का नाम संस्कार है। संस्कार आत्मा के शरीर धारण करने के पहले, जन्म ग्रहण करने के बाद और आत्मा के शरीर छोड़ने के बाद होते हैं। जन्म ग्रहण करने से पहले जो संस्कार किये जाते हैं, उसमें सबसे पहला संस्कार गर्भाधान संस्कार है। यह वह संस्कार है, जिसे आज का जड़वादी जगत विषय–तृप्ति का साधन मात्र समझता है, किंतु संतान के निमित्त पत्नी से संभोग करता है, तो इस संस्कार को वैदिक संस्कृति नवीन आत्मा के आवाहन का एक पवित्र यज्ञ मानती है। गर्भाधान संस्कार–आत्मा प्रकृति विकार से संयुक्त वीर्य और रज के मिलने को गर्भ कहते हैं और उसको गर्भाशय में शास्त्रोक्त क्रिया द्वारा रखने को गर्भाधान संस्कार कहते हैं।[1]

गर्भाधान संस्कार में माता–पिता के शारीरिक–मानसिक दोषों को दूर कर गुणों को समाविष्ट करते हैं। उक्त संस्कार के आभाव में शिशु शारीरिक–मानसिक रूप से विकृत हो सकता है। क्योंकि जैसा बीज होगा वैसा ही फल होगा। धुलकणादि दोषों से रहित थाली में भोज्य पदार्थों को प्राप्त करते हैं तो भोजन निर्दोष रह सकता है। नहीं तो शुद्व भोजन भी दुषित हो जाता है। इसी प्रकार माता–पिता के संस्कारहीनता से संतान भी संस्कारहीन हो सकता है। गर्भाधान संस्कार से माता–पिता के कुसंस्कार को समाप्त कर सुसंस्कार का आधान करना है। जिससे अपनी संतति के रूप में संस्कारी जीवात्मा को आकर्षित कर सके।

गर्भाधान संस्कार में माता–पिता के द्वारा दिव्य आत्मा का आवाहन करते हैं। जिससे माता के गर्भ में सुसंस्कारी जीवात्मा का प्रवेश होता है। इस संस्कार के आभाव में माता–पिता की तैयारी कुछ भी नहीं होता है। जिसके कारण माता–पिता के लिए यह संतान अनचाही संतान होती है। इस अनचाही संतान में किसी गुण को खोजना मुर्खता है।

संस्कारों में सब से पहला संस्कार 'गर्भाधान–संस्कार' है। आनेवाले जीवात्मा की चेष्टा के लिये आधार तैयार करने का नाम ही गर्भाधान संस्कार है। कल्पना कीजिए कि आपको किसी गौरवान्वित अतिथि की प्रतीक्षा है। आप उनको ठहराने के लिये अनेक तरह से तैयारी करते हैं। इसी प्रकार जो माता–पिता चाहते हैं कि हमारे घर में एक अच्छा जीव जन्म ले; उनको उस जीव के रहने के लिये भवन–निर्माण अर्थात् शरीर–निर्माण की तैयारी करनी चाहिए। जिस प्रकार के शरीर बनने की सम्भावना होगी, उसी प्रकार का जीव उसमें आयेगा। परमात्मा का नियम है कि वह जीव को उसके कर्मानुसार ठीक–ठीक फल देता है; न न्यून न अधिक। अर्थात् अमुक फल उसी को मिलगा, जो अपने कर्मों से उसका अधिकारी होगा। इसीलिये यदि कोई माता–पिता महल बनायेंगे, तो उस महल में रहने योग्य ही जीव भेजा जायेगा। यदि अस्तबल बनायेगे? तो अस्तबल में बंधने योग्य जीव भेजा जायेगा। यदि कूड़ा–घर बनायेंगे, तो उसमें रहने के लिये कीड़े ही आयेगा, जो कूड़ा–घर का

अधिकारी होगा। माण्डूक्य उपनिषद् में ब्रह्मवित् पुरूष के लिये कहते हैं कि उस ब्रह्मज्ञानी योगी के कुल में कोई ऐसा पुरूष जन्म नहीं लेता, जो ब्रह्मवित् न हो। ब्रह्मवित् माता–पिता के शरीरों से ऐसे शरीर बनने की सम्भावना नहीं है, जिसमें अब्रह्मवित् जीव रह सके।[2] अतः जिस प्रकार की सन्तान की इच्छा हो, उसी प्रकार की तैयारी माता–पिता को करनी होगी।

जो लोग जीवात्मा को अनादि व सदा रहनेवाला (अमर) मानते हैं उनके प्रत्येक कर्म में आत्मा की उन्नति का विचार एक स्वाभाविक बात है। इसलिए जहाँ जीवात्मा के साथ सम्बन्ध रखने के कारण शरीर, मन तथा इन्द्रियों का संस्कार आवश्यक है, वहाँ सबसे बढ़कर आत्मा के संस्कार को लक्ष्य में रखना सबसे अधिक आवश्यक है, क्योंकि मनु जी ने लिखा है–'सकल विद्या पढ़ने–पढ़ाने, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण आदि नियम पालने, अग्निहोत्र आदि, सत्य का गहण, असत्य का त्याग तथा सत्य विद्याओं का दान देने, वेदत्रयी विद्या के ग्रहण, सन्तानोत्पत्ति यज्ञ, महायज्ञों व यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्रह्मी अर्थात् वेद और ईश्वर का भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर कहा जाता है।'[3]

गर्भाधान संस्कार के होने के बाद ही शिशु पर बाद में जो संस्कार किये जाते है, उसका प्रभाव पड़ सकता है। अगर यह संस्कार नहीं होगा तो उसके पूर्व जन्म के कुसंस्कार के तीव्र प्रभाव के कारण उसके ऊपर उत्तरोत्तर संस्कारों का प्रभाव निष्फल होता चला जायेगा अर्थात् उस शिशु पर पूर्व कुसंस्कारों के कारण नवीन संस्कारों का सुप्रभाव नहीं पड़ेगा। यथा गिली मिट्टी पर कोई भी गहरा छाप (चित्र) देना सरल होता है। जबकि सुखी मिट्टी पर छाप देना कठिन ही नहीं असंभव है।

पुंसवन संस्कार–संस्कारों का आधार का गर्भाधान संस्कार है। यह संस्कारों का जड़ है। जिस पर अन्य संस्कार आधारित होते हैं। इस संस्कार के आभाव में एक अनिक्षित संतान होगा। अगर पुंसवन संस्कार करते हैं तो उसका प्रभाव नहीं पड़ सकता है। क्योंकि तामसिक, उत्तेजक, मादक आदि भोजन करने के अभ्यासी माता–पिता सात्त्विक वृत्ति वाली जीवात्मा को नहीं प्राप्त कर सकेगा। क्योंकि सात्त्विक वृत्ति वाली जीवात्मा अपने कर्मानुसार सात्त्विक वृत्ति वाली माता–पिता के पास जायेगा। पुंसवन के द्वारा पल रहे जीवात्मा के शरीर को सात्विक नहीं बना सकते क्योंकि उसका निर्माण तामसिक रज–वीर्य से बना है। इसका अभिप्राय यह है कि गर्भाधान संस्कार के विना माता–पिता उद्देश्यहीन हो जाते है। जिससे आगे के संस्कार से यर्थात् लाभ नहीं प्राप्त कर सकते हैं।

सिमन्तोनयन–संस्कार छः–सात माह में होता है; जब मानसिक विकास का समय होता है। इसमें माता की इच्छानुसार खान–पान कराने की बात है। संतान कैसी हो इस विषय पर विचार ही नहीं किया अर्थात् गर्भाधान संस्कार किया ही नहीं तो बच्चे के मस्तिष्क में कैसा संस्कार डालना चाहते हैं; यह निश्चय नहीं कर पाते हैं। जिसके कारण सिमन्तोनयन संस्कार निष्फल हो जाता है।

मान लीजिये कि माता के गर्भ में आया हुआ आत्मा वीरता के संस्कारों से युक्त है तो माता की रूचि और प्रवृत्ति भी उक्त सिद्धान्त के अनुसार इसी और झुकेगी। माता के संस्कार क्षात्रधर्म की ओर अधिक झुक जायेंगे और स्वभाव से माता अनोखी इच्छाओं का प्रकाश करती हुई उनकी पूर्णता के लिये यत्न करेगी। इस समय में यदि पति बालक में ब्राह्मणत्व के संस्कार जगाने के विचार से पत्नी को ब्रह्मविद्या का उपदेश सुनावे तो निस्सन्देह वह कानों से तो उस उपदेश को सुन लेगी, किन्तु वह उपदेश उसे हृदयंगम नहीं होगा और न उसे इस प्रकार के उपदेशों से सच्ची मानसिक प्रसन्नता की ही अनुभूति होगी। किन्तु यदि माता को महाभारत आदि की वीर गाथायें सुनाई जावें तो एक बार सुनी हुई गाथा भी उसके कान में बस जायगी। बड़ी रूचि से वह उसे सुनेगी, चित्त में बड़ी प्रसन्नता होगी और रात दिन उसे वीरों की महिमा का स्मरण होता रहेगा।

इस विवेचन में क्रम यह रहा कि चूंकि गर्भस्थ बालक के पूर्व संस्कार वीरता और क्षत्रियत्व से युक्त हैं, अतः माता के संस्कार भी उधर ही झुकेंगे और माता की प्रसन्नता और रूचि के अनुसार उसे ब्रह्मविद्या का उपदेश न देकर वीरगाथायें सुनाई जावें। यहाँ तक गर्भगत बालक के पूर्व संस्कारों का महत्व स्पष्ट है। गर्भगत बालक के संस्कारों से प्रेरित वीरता के संस्कारों के उदय के कारण माता की मनस्तुष्टि दोनों प्रकार की चर्चाओं अथवा गाथाओं से हो सकती है। इस स्थल पर यह वैदिक संस्कार राष्ट्र के कल्याणर्थ दिव्य सन्तान निर्माण के आवश्यक कर्त्तव्य का प्रबोधन करते हुए सन्देश देता है कि गर्भगत बालक अपने पूर्वजन्मों के कर्मानुसार वीरता के संस्कार साथ लाया है, जो माता की रूचि से स्पष्ट है। अब माता का कर्तव्य है कि वह उक्त रूचि का परिष्कार करते हुए उसे सही दिशा दे। बालक की वीरता के इन संस्कारों को और भी शक्ति दे और उन्हें ऐसे साचें में ढाल दे ताकि उसके गर्भ से उत्पन्न बालक सच्चा क्षत्रिय बन कर उसकी कोख को धन्य कर सके। तभी गर्भकाल के या बाद के संस्कारों की सार्थकता हो सकती है। इसलिए गर्भाधान संस्कार सब संस्कारों का आधार है।

बच्चे अपने पूर्वजन्म के कर्मानूसार स्वयं ही उत्तम संस्कार लेकर उत्पन्न होंगे, तो सीमन्तोन्नयनादि संस्कार की आवश्यकता नहीं है। ऐसा नहीं है। क्योंकि प्रारब्ध की सिद्धि के लिये भी पुरूषार्थ की आवश्यकता है। वस्तुतः बच्चों की भलाई के लिये माताओं को सदैव यत्नवान् रहना चाहिये।

जातकर्म संस्कार–माता–पिता के तामसिक रज–वीर्य और खान–पान से अर्थात् तमोगुणी शरीर मन से संतान का शरीर एवं मन बना है तो बच्चे के जिह्वा पर सोने की शलाका से शहद द्वारा ओ३म् लिखने से सात्विक वृत्ति का नहीं हो सकता है। गार्भिक बैजिक दोष दूर नहीं हो सकते है। इस लिए गर्भाधान संस्कार सब संस्कारों का आधार है।

नामकरण संस्कार–जब माता–पिता ने यह सोचा ही नहीं कि हमें कैसी संतान चाहिए तो अब यह संतान सामने है। इसका कैसा नाम रखा जाय यह माता–पिता को समझ में ही नहीं आता है हमारे दादा–परदादा ने अंग्रेजो के शासन काल में अंग्रेजो के अत्याचार से दुःखी होकर कहते थे कि अगर जीवित रहा तो तुम्हारे नाम का कुत्ता पालूँगा अर्थात् रॉकी, डब्लु, टिंकु, पप्पु, पिन्टु, आदि उद्देश्यहीन, अर्थहीन पशुतुल्य नाम रख लेते हैं। जो कि नामकरण संस्कार को व्यर्थ सिद्ध करता है। अगर गर्भाधान संस्कार किये होते तो उस संतान का नाम उद्देश्यपूर्ण रखते जब सात्विक संतान विद्वान पुत्र को चाहते तो नाम भी विद्याभुषण आदि रखते। उस संतान में जैसा गुण चाहते है, वैसा गुणों का याद दिलाने वाला नाम रखते। इस संस्कार में नाम के द्वारा गुणाधान का प्रयास करते हैं। जो गुण गर्भ में डालें है, सोचे होंगे तभी तो आपके शारीरिक–मानसिक रूप से सात्त्विक वीरोचित प्रभाव संतान पर पड़ता और तब वीरोचित नाम रख कर नामकरण संस्कार को सार्थक करते। नाम माता–पिता के विचारों की सामाजिक अभिव्यक्ति है, वे नवागत शिशु से क्या चाहते है ? वह समाज को अपने किन गुणों से विभूषित करें ? उसका चारित्रिक आदर्श क्या हो ? ये सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षाएँ केवल नाम में साकार हो जाती हैं। ये महत्त्वाकांक्षाएँ नाम से साकार तभी हो सकता है जब गर्भाधान संस्कार से नामानुकूल भावना से संस्कारित किया गया हो।

अन्नप्राशन संस्कार– अन्नप्राशन संस्कार से संतान को जैसा बनाना चाहते है, वैसा बनाया जा सकता है। जैसा कि कहा गया है कि जैसा खाये अन्न वैसा बने मन। अगर संतान का निर्माण तामसिक शारीरिक एवं मानसिक गुणों से हुआ है तो उसे एक दिन के अन्नप्राशनसंस्कार से सात्त्विक वृत्ति का नहीं हो सकता है। इसलिए अन्नप्राशन संस्कार तभी सार्थक होगा जब माता–पिता का भोजन सात्विक होगा, उसके अनुसार रज–वीर्य होगा, सात्विक वृति होगी तभी गर्भाधान संस्कार होने पर संतान सात्विक होगा। आहार शुद्ध होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है अन्तःकरण शुद्ध होने पर स्मरण शक्तिदृढ़ होती है, स्मरण शक्ति के स्थिर होने पर

सम्पूर्ण ग्रन्थियाँ (सन्देह दुविधा, अस्थिरता) आदि समाप्त हो जाते हैं।[4] आहार अर्थात् जो बाहर से भीतर आता है। स्मृति अर्थात् आत्मा–स्मृति। ग्रंथिका वे सब आकांक्षाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; वासनाएं जो तुम्हें बांधे हुए हैं; गांठे जिनमें तुम उलझ गए हो। जैसे मछली जाल में फँसी हो और तड़फती हो। जिसकी सारी ग्रंथियाँ टूट जाती हैं, उसका मुक्ति है, उसका ही मोक्ष है।[5]

मुण्डन संस्कार– मुंडन संस्कार को चुडाकरण संस्कार भी कहते हैं। एक से तीन वर्ष की आयु में जब दाँत निकल रहा हो तो मस्तिष्क में गर्मी को शांत करतें है। यह तभी सार्थक होगा जब खान–पान सात्विक होगा। जिस का आधार गर्भाधान संस्कार है।

कर्णवेध संस्कार–यह एक शारीरिक संस्कार के साथ मानसिक संस्कार है। कानों की शोभा कुण्डल पहनने से नहीं होती है। बल्कि वेद–शास्त्र के श्रवण से शोभता है। यह माता–पिता पर निर्भर करता है। माता–पिता तो वेद–शास्त्र न पढ़ा तो संतान कैसे सुन सकता है। अतः गर्भाधान संस्कार करते हैं तो मानो इसका नींव डालते हैं। जन्मोत्तर शिक्षादि– 'गर्भकाल में माता की भावना' नामक शीर्षक में जिस सात्त्विक बातों के सेवन तथा राजस–तामस बातों के त्याग का विधान किया गया है, उनका सेवन और त्याग संतानों से भी कराना चाहिये। तभी गर्भकाल में की गयी माता की भावनाओं को प्रकट होने में सहायता होगी। नहीं तो राजस–तामस का सेवन कराने से वे सात्त्विक भावना–रूप बीज नष्ट हो जायेंगे। यह नहीं समझना चाहिये कि ये अभी बच्चे हैं, कुछ समझते ही नहीं, अतः जो देखते, सुनते, गाते हैं, उनका इनपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। यद्यपि यह सत्य है कि बच्चों का हृदय गीली मिट्टी के लोंदे के समान होता है, उसे जैसे साँचे में डाला जायगा वैसा बन जायगा। बाल्यावस्था में डाले सात्त्विक संस्कारों कोई विरोधी संस्कार न होने से उनका इतना गहरा प्रभाव होता है कि वह जीवनभर नष्ट नहीं होता। यही कारण है कि राजस–तामस संस्कार बाल्यावस्था में पड़ जाने के बाद सात्त्विक संस्कार बलपूर्वक डालने पर भी उनका गहरा प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये प्रारम्भ से बच्चों में सात्त्विक संस्कार डालना चाहिये।

उपनयन संस्कार–उपनयन संस्कार में दण्ड धारण कराया जाता और क्या उसे बनना है? इस उद्देश्यानुसार लाठी की लम्बाई एवं लाठी किस वृक्ष का बनाया जाय और कब कराय जाय। अगर संतानोत्पत्ति गर्भाधान संस्कार द्वारा प्राप्त करते हैं। तो समय (ब्राह्मण–पुत्र को पाँचवें, क्षत्रिय–पुत्र को छठे और वैश्य–पुत्र को आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार करें।[6] लाठी की लम्बाई, लाठी किस वृक्ष की हो आदि में द्विविधा नहीं होगी।

गर्भाधान संस्कार के समय ब्रह्मविद् संतान की कामना से संतान प्राप्त किये हो, और पूर्वोत्तर संस्कार भी ब्रह्मविद् होने के अनुरूप हो तो पाँच वर्षो में उपनयन संस्कार कर और उत्तरोत्तर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

वेदारम्भ संस्कार–जिस प्रकार की इच्छा से गर्भाधान संस्कार किये थे । वैसे ही शिक्षा देने की व्यवस्था करेंगे। अन्यथा ये सार्थक नहीं हो सकता है।

समावर्तन संस्कार–शिक्षा की समाप्ति के बाद नये प्रायोगिक या व्यवहारिक क्षेत्र में प्रवेश करने का केन्द्रिय ज्ञान दिया जाता हैं कि ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हुए (प्रजातंतु मा वच्छेतसि) अपने वंश को मत उच्छेद करना । अर्थात् विवाहोपरान्त गर्भाधान संस्कार अवश्य करना। जो संस्कारों का आधार है।

विवाह संस्कार–इस संस्कार का उद्देश्य संतान की प्राप्ति है। जो गर्भाधान संस्कार के विना संभव नहीं है। संतान अगर गोरी चाहिए या पुत्र या पुत्री चाहिए। आदि का समाधान कन्या वरण, वर वरण, खान–पान, रहन–सहन आदि पर निर्भर करता है। यह तभी हो सकता है जब गर्भाधान संस्कार सही रूप में किया हो। चतुर्थी कर्म अर्थात् गर्भाधान विवाह का आवश्यक अंग है।

वानप्रस्थ संस्कार–गर्भाधान संस्कार से संयमी सदाचारी देव–तुल्य माता–पिता ही वानप्रस्थ आश्रम में निःस्पृह होकर बच्चों को सुशिक्षा देने का अधिकारी ब्रह्मचर्य आश्रम से प्राप्त ज्ञान को गृहस्थाश्रम में व्यवहारोपरान्त ही वानप्रस्थाश्रम में वानप्रस्थी ही शिक्षा देने का अधिकारी होते थे । गर्भाधान संस्कार से ही माता–पिता के संयमी सदाचारी आदि सत्य ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा दिये।

संन्यास संस्कार –अब इसी ज्ञान को बड़े लोगों को देने के लिए वानप्रस्थ पूर्वाभ्यास था। इसी सच्चाई, ईमानदारी, से संन्यासी निर्भिक, नीडर, सत्यवादी, निःस्पृह, और अनासक्त अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार एवं शुभसचेतक बन कर तीनों आश्रमों के गतिविधियों पर नियंत्रण एवं मार्गदर्शन करते हैं। संन्यासी स्वयं सम्राटों का सम्राट परिव्राट होने के कारण उसका नियंत्रण स्वयं ईश्वर करते हैं।

अन्त्येष्टि संस्कार–सत्य सनातन वैदिक धर्मानुसार अन्त्येष्टि कर्म ज्येष्टपुत्र– धर्मपुत्र ही करता है। धर्मपुत्र वही कहलाता है जो गर्भाधान संस्कारोपरान्त जन्म लिया हो। बाद के पुत्र कामज होने के कारण अन्त्येष्टि संस्कार करने का अधिकारी नहीं होता हैं। यह संस्कार सविधिक सम्पादन तभी कर सकते है, जब ज्येष्टपुत्र गर्भाधान संस्कारोपरान्त जन्म लिया हो। वर्तमान में पुत्री के बाद भी उत्पन्न संतान ज्येष्टपुत्र माना जाता है। क्योंकि यह पुत्र विवाह संस्कारोपरान्त हुआ है।

सारांश–

संस्कारों का आधार का गर्भाधान संस्कार है। जिस पर अन्य संस्कार आधारित हैं। गर्भाधान संस्कार के आभाव में एक अनिक्षित संतान होगा। क्योंकि तामसिक, उत्तेजक, मादक आदि भोजन करने के अभ्यासी माता–पिता सात्त्विक वृत्ति वाली जीवात्मा को नहीं प्राप्त करने से पुंसवन, बच्चे के मस्तिष्क में कैसा संस्कार डालना चाहते हैं; यह निश्चय नहीं कर पाने से सिमन्तोनयन बच्चे के जिह्वा पर सोने की शलाका से शहद द्वारा ओ३म् लिखने से सात्विक वृत्ति का नहीं होने से जातकर्म, उद्देश्य हीन नाम रखने या इसका कैसा नाम रखा जाय यह माता–पिता को समझ में ही नहीं आने से नामकरण संस्कार निष्फल होगा

माता–पिता का भोजन सात्विक होगा, उसके अनुसार रज–वीर्य होगा, सात्विक वृति होगी तभी अन्नप्राशन संस्कार होने पर संतान सात्विक होगा। संतानोत्पत्ति गर्भाधान संस्कार द्वारा प्राप्त करते हैं। तो समय (ब्राह्मण–पुत्र को पाँचवें, क्षत्रिय–पुत्र को छठे और वैश्य–पुत्र को आठवें) वर्ष में उपनयन संस्कार करें। लाठी की लम्बाई, लाठी किस वृक्ष की हो आदि में द्विविधा नहीं होगी और उत्तरोत्तर लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार की इच्छा से गर्भाधान संस्कार किये थे। वैसे ही शिक्षा वेदारम्भ संस्कार में देने की व्यवस्था करेंगे। अन्यथा ये सार्थक नहीं हो सकता है।

ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हुए समावर्तन संस्कार द्वारा अंतिम शिक्षा दिया जाता है कि अपने वंश को मत उच्छेद करना (प्रजातंतु मा वच्छेतसि)। अर्थात् विवाहोपरान्त गर्भाधान संस्कार अवश्य करना। जो संस्कारों का आधार है। विवाह संस्कार का उद्देश्य संतान की प्राप्ति है। जो गर्भाधान संस्कार के विना संभव ही नहीं है।

गर्भाधान संस्कार से ही वानप्रस्थी से ही संन्यासी निर्भिक, नीडर, सत्यवादी, निःस्पृह, और अनासक्त अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार एवं शुभसचेतक बन कर तीनों आश्रमों के गतिविधियों पर नियंत्रण एवं मार्गदर्शन करते हैं। सत्य सनातन वैदिक धर्मानुसार अन्त्येष्टि कर्म ज्येष्टपुत्र–धर्मपुत्र ही करता है। धर्मपुत्र वही कहलाता है जो गर्भाधान संस्कारोपरान्त जन्म लिया हो। बाद के पुत्र कामज होने के कारण अन्त्येष्टि संस्कार करने का अधिकारी नहीं होता हैं। इस प्रकार गर्भाधान संस्कार सब संस्कारों का आधार है।

निष्कर्ष–

गर्भाधान संस्कार ही प्रथम श्रेष्ट संस्कार, जिस पर निर्भर सब संस्कार।

इससे संस्कारित हो सुखमय संसार, नहीं तो बिगड़े जन्म हजार।।

गर्भाधान संस्कार ही अधिक प्रभावी होता है। क्योंकि आदत ही आदत को बनाता है। जो वस्तु आपने नहीं खाया है, उसे खाने की इच्छा नहीं होती है। यथा जो मादक वस्तु नहीं खाते हैं उन्हें इस मादक वस्तु से कोई प्रयोजन नहीं होता है। संस्कार कोई बाह्य या क्रिया नहीं है जो उसे आरोपित कर दिया जाय। लेनिन ने सोचा था कि ब्रेन वाशिंग करके चरित्र को ढाला जा सकता है परन्तु संस्कारों की रचना बाहर से आरोपित करके सम्भव होती तो सोवियत सम्राज्य ऐसे भड़भड़ाकर क्यों गिर पड़ता ? संस्कार बलपूर्वक या तर्क–वितर्क से नहीं बनाये जा सकते। डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने अपने एक लेख में लिखा था कि समाज और राज्य का दायित्व है कि वे ऐसी परिस्थितियों की रचना करें, जिनमें सत्संकल्प और सदाचार फूले–फले और कुत्सित भाव नष्ट हो सके। जिसका जीता–जागता मिसाल है–नेपोलियन, हिटलर था। इसलिए गर्भाधान संस्कार पर ही सब संस्कार आधारित है। उत्तरोत्तर संस्कार के लाभ के लिए सर्वप्रथम इस संस्कार से हो कर जाना होगा जिससे इहलोक एवं परलोक सानन्दमय बन जाय अन्यथा असफलता और दुःख ही प्राप्त होगा। जैसे सीढी के प्रथम पायदान को छोड़ कर उपर नहीं चढ सकते वैसे ही इस संस्कार को छोड़ देने से अग्रेत्तर संस्कार का मनोवांच्छित लाभ नहीं मिल सकता है।

संदर्भ सूची–

1. गर्भस्थिरीकरण–गर्भलम्भन (गर्भो लभ्यते येन कर्मणा तत् गर्भलम्भनं नाम कर्म) पं0 विशालमणि उपाध्याय कृत कर्मकाण्ड भास्कर;
2. 'नास्याब्रह्मवित्कुलेभवति य एवं वेद' ।; माण्डूक्य उपनिषद्; १0
3. स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः। महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ।;मनुस्मृति; अध्याय–२; श्लोक–२८
4. ''आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रवा स्मृतिः, स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ।''छान्दोग्य उपनिषद्
5. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे।।;मुण्डकोपनिषद्; २/२८
6. ब्रह्मवर्चस्कामस्य कार्य विप्रस्य पंचमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।;मनुस्मृति; अध्याय–२; श्लोक–३७